

धर्म या मजहब

भाग - २

इस शृंखला के प्रथम भाग में बताया जा चुका है कि अकाल पुरुष 'प्रेम-स्वरूप' है। समस्त सृष्टि में दिव्य 'ज्योति' प्रविष्ट है तथा ईश्वरीय 'प्रेम-स्वैपना', समस्त सृष्टि में ओत-प्रोत रवि-रही परीपूर्ण है।

इस 'प्रेम-स्वैपना' की 'प्रीत-डोरी' में, सृष्टि का कण-कण पिरोया हुआ है।

“जँत्र तँत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग ॥”

(जाप पृ १०)

इस ईश्वरीय 'प्रीत-डोरी' के अमिट सूक्ष्म 'आकर्षण' द्वारा, प्रत्येक जीव, अपने केन्द्र 'अकाल-पुरुष' की ओर आकर्षित हो रहा है। यह गुप्त दैवीय —

आकर्षण

कॉरवी

प्रीत-डोरी

प्रेम-आकांक्षा

प्रेम-स्वैपना

विरह की तड़प

प्रत्येक जीव की अवतर-आत्मा में, 'साथ-लिखा' हुआ 'हुकुम' है।

इसी गुप्त आत्मिक 'प्रीत-डोरी' को —

बूझना

चीन्हना

पहचानना

महसूस करना

अनुभव करना

ही, प्रत्येक जीव का, अपना-अपना निजी 'धर्म' है।

“केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो ॥”

(रामकली पा: १०)

इसी दैवीय 'प्रेम-आकर्षण' की प्रतिक्रिया स्वरूप (response), अपने 'स्रोत' अकाल पुरुष की ओर, 'आकर्षित-होना' ही हुकमि रजाई चलना है ।

इस दैवीय 'प्रेम-आकर्षण' की रवानगी की सहज चाल में 'सुर' होकर, अपने केन्द्र अकाल-पुरुष की ओर खिंचे जाना ही, समस्त जीवों का एकमात्र सच्चा आत्मिक 'धर्म' है ।

यह —

हुकमि रजाई चलना नानक लिखिआ नालि ॥' ही, सारी सृष्टि का —

अंतरीव

निर्मल

पवित्र-पावन

श्रेष्ठ

एकमात्र

अटल

युगो-युग

श्रथराता

जिह्वा

रुनझुन छेड़ता

'सर्वज्ञ इलाही धर्म' है ।

यह 'साथ लिरवा' हुआ 'हुकुम' ही, सृष्टि के कण-कण का, अपना अपना 'निजी-धर्म' है ।

इस दैवीय 'प्रेम-पदार्थ' के प्रकाश तथा प्रवृत्ति को ही —

नम

श्रवद

प्रीत

प्रेम

प्यार

आकर्षण
 विरह
 स
 स्र
 चव
 सुख
 शक्ति
 अन्दर
 देन
 इमान
 धर्म
 परमार्थ

कहा गया है ।

इसी प्रकार, दैवीय 'प्रीत-डोरी' के आकर्षण में —

नाम जपना

नाम स्मरण करना

सिम्हरन करना

भजन करना

शब्द कमाना

गुण गायन करना

कीरतन करना

सेवा करना

स्वयं को न्यौहडावर करना

विरह में तड़पना

शुक्र करना

भय में रहना

अरदास करना

ही, 'साथ-लिखे' दैवीय धर्म का 'पालन करना' है ।

उपरोक्त विचार की गुरबाणी यूँ पुष्टि करती है —

'सरब धरम महि खेसट धरमु ॥

हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥'

(पृ २६६)

'नानक हरि कीरतनु करि अटल एहु धरम ॥'

(पृ २९९)

'करम धरम सचु साचा नाउ ॥'

(पृ ३५३)

‘माई मेरे मन की प्रीति ॥

एही करम धरम जप एही राम नाम निरमल है रीति ॥’ (पृ ७१६)

‘धरमु द्रिड़हु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिड़इआ ॥’ (पृ ७७३)

हरि को नामु लै उत्तम धरमा ॥’ (पृ ८७४)

बलिओ चरागु अअध्यार महि सभ कलि उधरी इक नाम धरम ॥’ (पृ १३८७)

कल मै एकु नामु किरपा निधि जाहि जपै गति पावै ॥

अउर धरम ता कै सम नाहनि इह बिधि बेदु बतावै ॥ (पृ ६३२)

‘जतु सअजम तीरथ ओना जुगा का धरमु है

कलि महि कीरति हरि नामा ॥’ (पृ ७६७)

84 लारव योनियाa अनजाने तथा भोले-भाव ही, अकाल पुरुष के हुकुम मेa प्रवृत्त हैa । इस लिए उनकी सअक्षिप्त तथा बिन माअगी आवश्यकताओa की पूर्ती सहज स्वाभाविक ही हो रही है ।

पँछ पसू नग नाग नराधिप सरब समै सभ को प्रतिपारै ॥

जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दै है ॥

(सँवये पा: १०)

‘कोटि ब्रह्मअड को ठाकुरु सुआमी सरब जीआ का दाता रे ॥

प्रतिपालै नित सारि समालै इकु गुनु नही मूरखि जाता रे ॥’ (पृ ६१२)

‘ना करि चिअत चिअता है करते ॥ हरि देवै जलि थलि जअता सभतै ॥

अचिअत दानु देइ प्रभु मेरा विचि पाथर कीट परवाणी हे ॥ (पृ १०७०)

इसी प्रकार मनुष्य के ‘बच्चे’ को भी, माँ के पेट मेa ‘गर्भधान’ से लेकर जन्म उपराअत भोली-भाली अवस्था तक, ‘माँ’ ‘ममता’ द्वारा, आवश्यक खुराक, बरिखिशेa इत्यादि, बिना माअगे ही प्राप्त हो रही हैa, तथा उसका भोले-भाव ही पालन-पोषण हो रहा है ।

‘माता के उदर महि प्रतिपाल करे सो किउ मनहु विसारीऐ ॥

मनहु किउ विसारीऐ एवडु दाता

जि अगनि महि अहारु पहुचावए ॥

ओस नो किहु पोहि न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए ॥ (पृ ९२०)

परन्तु, जब बच्चा सयाना हो जाता है और अपनी सयानप व चतुर्हाई द्वारा दैवीय 'हुकुम' की चाल मेa 'विघ्न डालता है, तो दैवीय बख्शिशाओ के प्रवाह मेa 'रुकावट' पड़ जाती है, तथा वह अहम् के भ्रम-भुलाव मेa कर्म करता है । इस प्रकार वह अपनी सयानप द्वारा इलाही बरकतो से वाचित रहता है ।

उपरोक्त विचार अनुसार, गर्भधान से लेकर पैदा होने तक, बच्चा माँ के पेट मेa रहता है । इस अवस्था मेa वह अग्नि के धरे मेa रहता है । इस ताप तथा गर्मी से वह स्वयं, किसी प्रकार भी अपना बचाव नहीं कर सकता । परन्तु कृपालु कर्त्ता की कृपा है कि वह जीव की इस अचेत अवस्था मेa 'रक्षा' करता है । उस अग्नि मेa भी वह शांत तथा सुखी है, व्यक्ति आत्मिक कला द्वारा माता के पेट मेa उसका बचाव हो रहा है —

'और की बात कहा कहि तो सौ

सु पेट ही के पट बीच बचावै ॥' (त्व प्रसादि सँवये पा: १०)

'मात गरभ महि आपन सिमरनु दे तह तुम राखनहारे ॥' (पृ ६१३)

जन्म उपरान्त मनुष्य अज्ञानतावश माया के सम्पर्क मेa आ जाता है । वह लिव, जो उसकी परमात्मा से जुड़ी थी, टूट कर माया से जुड़ जाती है । कर्त्ता से वह विमुख हो जाता है तथा माया के हुकुम मेa चलने लगता है । मोह तथा तृष्णा के अधीन हो जाता है । वास्तव में, यह माया भी, माँ के पेट की अग्नि की भाँति, 'तपाने वाली' है । परन्तु इंसान अपनी सयानप के अधीन इस अग्नि की वास्तविकता को नहीं समझता तथा न ही वह समझना चाहता है । उसे तो द्वैत भाव ही अच्छा लगता है, प्रभु भूल जाता है । माया द्वारा मंत्रमुग्ध हुआ द्वैत-भाव के आकर्षण में, ऐसा फिसलता है, कि रसातल मेa जा पहुँचता है । गुरबाणी सीख देती है, परन्तु वह तो स्वयं को ही बड़ा सयाना समझता है तथा किसी अन्य सीख की आवश्यकता ही नहीं समझता ।

'जैसी अग्नि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥

माइआ अग्नि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥

जा तिसु भाणा ता जातमिआ परवारि भला भाइआ ॥

लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ॥

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥’ (पृ ९२१)

इस प्रकार ‘सयाना’ बच्चा — दैवीय ‘सहज-चाल’ से टूटकर अपने ‘साथ लिखे’ अातरीव ‘निजी धर्म’ से विमुख हो जाता है, तथा ईश्वरीय ‘रजा’ मेa से निकल कर, अपनी इच्छा मेa विचरण करते हुए, दुखी होता है ।

‘आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा रवावै ॥’ (पृ ६०१)

‘जब लगु हुकमु न बूझता तब ही लउ दुखीआ ॥’ (पृ ४००)

‘हुकमु न जाणै बहुता रोवै ॥ अादरि धोखा नीद न सोवै ॥’ (पृ ८५)

‘मनमुख हुकमु न जाणनी तिन मारे जम जाद्वार ॥’ (पृ ९०)

‘नानक हुकमु न बुझई अाधा कहीऐ सोइ ॥’ (पृ ९५४-५५)

‘जो हुकमु न बूझै खसम का सोई नरु कचा ॥’ (पृ १०९४)

इस प्रकार मनुष्य — अपने ‘अहम्’ के भ्रम भूलाव मेa, अपने कर्त्ता अकाल पुरुष को ‘भूल’ कर ‘हुकुम-रूपी’ — ‘साथ लिखे’ दैवीय ‘धर्म’ से —

बेखबर

अनजान

लापरवाह

बेपरवाह

होकर, अज्ञानता के अाधिकार मेa विचरण करता है, तथा

‘जेहा बीजै सो लुणै करमा सवदइ खेतु ॥’ (पृ १३४)

के कानून मेa प्रवृत्त होता है ।

इस ‘तत्त-रूपी’ दैवीय ‘धर्म’ से विमुख होकर, जो भी अन्य कर्म-धर्म करता है, सभी फोकट हैं तथा निष्फल जाते हैa —

‘करम धरम पाखअड जो दीसहि तिन जमु जागाती लूटै’ ॥ (पृ ७४७)

‘करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपरि नामु अचार ॥’ (पृ ४०५)

‘कल मै एक नामु किरपा निधि जाहि जपै गति पावै ॥
अउर धरम ता कै सम नाहनि इह बिधि बेदु बतावै’ ॥ (पृ ६३२)

‘जतु सअजम तीरथ ओना जुगा का धरमु है ॥
‘कलि महि कीरति हरि नामा ॥’ (पृ ७९७)

‘जे जाणसि ब्रहमा करमं ॥ सभि फोकट निसचउ करमा ॥’ (पृ ४७०)

साचु धरमु नही भावै डीठा ॥
झूठ धोह सिउ रचिओ मीठा ॥ (पृ ६७६)

‘तीरथ करै ब्रत फुनि राखै नह मनूआ बसि जा को ॥
निहफल धरमु ताहि तुम मानहु साचु कहत मै या कउ ॥’ (पृ ८३१)

‘जिनि आतम ततु न चीन्हिआ ॥
सभ फोकट धरम अबीनिआ ॥’ (पृ १३५१)

जब हम, अकाल-पुरुष या उसके प्रकाश-रूपी ‘नाम’ या ‘शब्द’ का :

जाप करते हैं
याद करते हैं
अराधना करते हैं
सिंमरण करते हैं
स्मरण करते हैं
गुण-गायन करते हैं
सिपत्त सलाह करते हैं
कीरतन करते हैं
अनुसरण करते हैं

तो हमारे ‘मन’ का सुरति द्वारा ‘आत्मिक-मेल’ (Divine communion) होता है ।

बिजली की तारोa का ‘मिलाप’ — सूझम ‘फ्यूज़-तार’ (fuse wire) से होता है । जब यह ‘फ्यूज़-तार’ ‘टूट’ जाये या ‘जल’ जाये — तो तारोa का ‘मिलाप’ भी टूट जाता है, तथा बिजली का ‘प्रवाह’ रुक जाता है । इस प्रकार हम बिजली की सभी बरकतोa से वंचित हो जाते हैंa ।

दूसरे शब्दों में 'फ्यूज-तार' (fuse wire) ही सभी बरकतों का माध्यम तथा साधन है ।

इसी प्रकार, सूक्ष्म 'सुरति' ही, 'जीव' तथा 'नाम' या 'शब्द' के बीच — दोनों को मिलाने वाली 'प्रीत-तार' है ।

यह 'सुरति-शब्द' का मेल ही — 'जीव' का अन्तर-आत्मिक 'दैवीय धर्म' है ।

'गुरुमुखि सुरति सबदु नीसानु ॥' (पृ ४१४)

'सुरति सबदु धुनि अन्तरि जागी ॥' (पृ ९०३)

'सुरति सबदु भव सागर तरीऐ नानक नामु वखाणे ॥' (पृ ९३८)

'पारि साजनु अपारु प्रीतमु गुरु सबद सुरति लधावए ॥' (पृ १११३)

मुकति भई बधन गुरि खेल्हे सबदि सुरति पति पाई ॥' (पृ १२५५)

'सबदि सुरति उपदेसु सचि समाणिआ ।' (वा भा गु ३/१)

'सबदि सुरति लिव लाइ हुकमु कमाइआ ।' (वा भा गु ३/२०)

'सबदु सुरति लिव अलखु लखाए ।' (वा भा गु ५/५)

अन्तर आत्मा में 'सुरति-शब्द' के 'मिलाप' द्वारा ही, आत्म मण्डल की सभी बख्शाओं तथा बरकतों का प्राप्त होती है ।

यह 'आत्म-मेल' (Divine communion) ही जीव का

परमार्थ है

धर्म है

मज़हब है

आत्मिक मण्डल है ।

'अन्तर आत्मै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ॥' (पृ ७९१)

'शब्द-सुरति' के अन्दरूनी 'मिलाप' के बिना — दैवीय कृपा से जीव वंचित रहता है, तथा माया के भ्रम-भुलाव में गलतान रहता है —

'करहि बिकार विथार घनेरे सुरति सबदु बिनु भरमि पइआ ॥' (पृ ९०६)

‘साकत नरि सबद सुरति किउ पाईए ॥
सबद सुरति बिनु आईए जाईए ॥’

(पृ१०४२)

‘सूर्य’ के सम्मुख आने पर, प्रकाश, उष्णता, जीवन आनंद आदि अनेक गुण सहज ही प्राप्त होते हैं, तथा ‘अंधकार’ की ओर स्वतः ही पीठ हो जाती है ।

इसके ठीक विपरीत, सूर्य की ओर पीठ करने से, या ओझल होने पर, सूर्य के अनेक गुणों से वंचित हो जाते हैं, तथा अंधकार के सभी अवगुण हमारे भीतर प्रवेश कर जाते हैं, जिस कारण, हमें अनेक दुख क्लेश भोगने पड़ते हैं।

ठीक इसी प्रकार — जब हम अकाल पुरुष या ‘नाम’ का —

ख्याल

ध्यान

याद

सिंमरन

जाप

अराधना

करते हैं, तो हमारे भीतर सभी दैवीय ‘गुण’ सहज स्वाभाविक ही प्रवेश हो जाते हैं, हमारी ‘पीठ’ ‘मायिकी-अंधकार’ की ओर हो जाती है, तथा मायिकी-अंधकार को अवगुणों व क्लेशों से सहज ही छुटकारा हो जाता है ।

मलिन मन का ‘रुख’, सहज ही ‘मायिकी अंधकार’ की ओर हो जाता है ।

निर्मल मन की ‘रुचि’ — अकाल पुरुष या ‘नाम’ की ओर आकर्षित होती है ।

जिस प्रकार ‘प्रकाश’ होने से, अंधकार स्वयं ही ‘अलोप’ हो जाता है — निकालना नहीं पड़ता !

उसी प्रकार ‘नाम’ के ‘प्रकाश’ द्वारा, मायिकी भ्रम भुलाव के ‘अंधकार’ का दायरा तथा उसकी ‘हठीली फौज’ भी, स्वयं ही ‘अलोप’ हो जाती है ।

इस विचार से यह निषकर्ष निकलता है कि —

माया के भ्रम-भुलाव के 'अधकार' में रहना ही — 'पाप' है ।

'नाम' के 'प्रकाश मण्डल' में विचरण करना ही 'पुण्य' है ।

दूसरे शब्दों में, यूँ कहा जा सकता है कि —

अकाल पुरुष की 'याद' या 'सिमरन' ही 'धर्म' है ।

अकाल पुरुष को 'भूलना' या विमुख होना — अधर्म है ।

'पाप' या 'पुण्य'

'अधर्म' या 'धर्म'

आपस में, विरोधी तथा बिल्कुल उल्टे 'अवस्थाएँ' हैं ।

परन्तु, हमारे मानसिक तथा धार्मिक जीवन का व्यवहार गुरुबाणी के अतरीव उद्देश्य से बिल्कुल उल्टे हो रहा है ।

जिस फोकट 'धर्म' का त्याग करना या भुलाना है, उसी को —

याद करके

घोट के

ध्यान धर के

मान के

सिमरन करके

पालन करके

'दृढ़' कर रहे हैं !

जिस 'हुकुम-रूपी' दैवीय 'धर्म' को —

बूझना है

याद करना है

सिमरन करना है

अभ्यास करना है

'दृढ़' करना है

अनुसरण करना है,

उसे हम बिल्कुल 'भुला' बैठे हैं, या उस ओर से लापरवाह व मस्त हुए पड़े हैं !

अतरीव दैवीय 'धर्म' द्वारा ही आत्म 'प्रकाश' हो सकता है ।

84 लाख योनिया तो, सीमित बुद्धि के कारण, इस दैवीय धर्म को बूझ या अनुभव नहीं कर सकतीं — परन्तु फिर भी स्वतः, भोले भाव ही अपने अपने 'साथ-लिखे' 'निजी धर्म का पूर्ण रूप से अनजाने ही पालन कर रही हैं!

यह दैवीय 'हुकुम-रूपी' 'धर्म' प्रत्येक जीव की अवतर-आत्मा में, आदि से, 'साथ' लिखा हुआ है, तथा चुप-चाप, गुप्त रूप से 'स्वै प्रेरणा द्वारा, सृष्टि के कण-कण में अटूट, सदैव, स्वतः, प्रवृत्त हो रहा है ।

यह अवतर-मुख 'साथ लिखा' दैवीय 'धर्म' —

सीरवा-सिरवलाया
समझा समझाया
पढ़-पढ़ाया
धारण किया
बदला
थोपा

नहीं जा सकता, तथा —

देवादेवी
जबरदस्ती
कर्मकाष्ठ
पाठ-पूजा
हठ धर्म
व्रत-नेम
तीर्थयात्रा
कुरबानिया

द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता । जैसे —

लख नेकीआ चागिआईआ लख पुवना परवाणु ॥
लख तप उपरि तीरथा सहज जोग बेबाण ॥
लख सूतण सत्राराम रण महि छुटहि पराण ॥
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ॥
जिनि करतै कारण कीआ लिखिआ आवण जाणु ॥
नानक मती मिथिआ 'करमु' सचा नीसाणु ॥

(पृ ४६७)

‘मनहठि किनै न पाइओ सभ थके करम कमाइ ॥
मनहठि भेख करि भरमदे दुरवु पाइआ दूजै भाइ ॥’

(पृ५९३)

ऐसे —

अति सूक्ष्म
अक्षर-सुख
आत्मिक
उत्तम-श्रेष्ठ
पवित्र-पावन
अटल
अपर
निर्मल
निरन्तर
सर्वज्ञ
हुकुम-रूपी
शब्द-रूपी
नाम-रूपी
तत्-रूपी

अतरीव-दैवीय ‘धर्म’ के गुण-भेद को —

बूझने
सीझने
पहचानने
अनुभव करने
मानने
कमाने

के लिए —

बाहर-सुख
सीमित
मलिन
च्छन्न
अधूरी

ऊप्री

काल-वश

मायिकी

‘बुद्धि’ ही प्रर्याप्त नहीं है । जैसे —

‘पाठ पढ़िओ अरु वेदु बीचारिओ निवलि भुअ ागम साधे ॥
पठ्य जना सिउ सङ्गुन छुटकिओ अधिक अहबुधि बाधे ॥’ (पृ ६४१)

‘चतुराई सिआणपा कितै कामि न आईए ॥’ (पृ ३९६)

वास्तव में — यह आत्मिक मॉडल की निराली दिव्य ‘खेल’ है, जो हमारी अल्प ‘बुद्धि की ‘पकड़’ से बाहर है, क्योंकि यह ‘निजी धर्म’ हमारी आत्मा में साथ ही —

लिखा

रच

धँसा

बसा

सा

ओत-प्रेत

सर्वत्र परिपूर्ण है ।

इस सूक्ष्म सर्वज्ञ, विश्व व्यापी दिव्य ‘निजी धर्म’ को ‘भेद’ को, शब्द-सुरति के मिलाप द्वारा केवल अवतर-आत्मा में, अनुभव प्रकाश में ही —

बूझा

सीझा

पहचाना

माना

अनुभव किया

जा सकता है ।

इस ‘तत्-सार’ आत्मिक मॉडल के ‘हुकूम-रूपी’ ‘निजी धर्म’ को, कोई विरला बख्शा हुआ गुरुमुख ही बूझता है तथा अनुसरण करता है ।

‘सचा तेरा हुकमु गुरुमुखि जाणिआ ॥’ (पृ १४४)

हुकमु तेरा खरा भारा गुरुमुखि किसै बुझाए ॥’ (पृ ४४१)

‘नानक हुकमु तिना मनाइसी भाई जिना धुरे कमाइआ नाउ ॥’ (पृ १४१९)

परन्तु, मनुष्य योनि ने —

अपने ‘साथ लिखे’ हुकम रूपी’, दिव्य धर्म को

बुझने या ‘अनुभव करने’ की

अपेक्षा

माया के भ्रम-भुलाव में खचित होकर,
अपनी तीक्ष्ण बुद्धि की दैवीय ‘देन’ का
गलत प्रयोग किया है ।

इस ‘नज़रिये’ से, हम मनुष्य की ‘सर्वोत्तम योनि’ की
महानता को ‘लज्जित’ कर रहे हैं !

गुरुबाणी में हमारी ऐसी दशा को यूँ दर्शाया गया है —

पसू मिलहि चतुर्गिआईआ खडुखावहि अत्रिमु देहि ॥

नामु विहूणे आदमी धिगु जीवण करम करेहि ॥ (पृ ४८९)

‘मनमुख माणस देह ते पसू परेत अचेत चागरे ॥

होइ सुचेत अचेत होइ माणसु माणसु दे वलि हेरे ॥’

(वा. भा. गु. १५/१९)

जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में सूर्य के समस्त गुण प्रविष्ट हैं, उसी प्रकार अवतर-
मुख ‘दैवीय धर्म’ में भी, सभी दैवीय मण्डल के ‘दिव्य गुण’ प्रविष्ट तथा प्रकृत
हैं, जैसे —

प्रीत

प्रेम

स्व

चक्र

दय

सत्

सत्के
 धैर्य
 क्षमा
 धर्म
 नम्रता
 सुख
 अमृत
 शक्ति
 मैत्री-भाव
 आकर्षण
 सेवाक्षीव
 स्मर्पण
 नम
 रज
 ज्ञान ।

इसलिए, यदि हम अपने 'साथ-लिखे', गुप्त, 'आत्मिक-धर्म' को बूझकर, अनुभव करके, इसके वेग की सहज-चाल में 'प्रवाहित हो जाए' तब उपरोक्त दर्शाये सभी दिव्य 'गुण' या आत्मिक 'बख्शिवा' सहज स्वाभाविक ही हमारे मन, तन, बुद्धि में प्रवेश हो जाएगी ।

दूसरे शब्दों में इस दैवीय, 'हुकुम-रूपी', 'आत्मिक-धर्म' को अनुभव करके, इसकी 'रजा' में 'सुर' होकर 'प्रभु इच्छा मानने' से —

1. माया का 'भ्रम-भुलाव' उतर जाता है, (जैसा कि प्रकाश होने पर, 'अधकार' स्वयं ही अलोप हो जाता है ।)
2. अहम् के 'दीर्घ रोग' से छुटकारा हो जाता है तथा 'जीव' अपने सतगुरु का 'बै-स्वरीद' सेवक बनकर सेवा करता है ।
3. 'मैं-मेरी' से उत्पन्न मायिकी दुख-क्लेश तथा मायिकी-अग्नि की लपटों से बच जाता है ।

4. माया की पकड़ से निर्लिप्त होकर — ‘आवा-गमन’ के चक्र से बच जाता है तथा यम के वश में नहीं पड़ता ।

5. गुरबाणी के मूल उपदेश,

‘हुकम रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि’ ॥

की सहज स्वाभाविक पालना होती है ।

6. ‘रजा’ मानने से — आत्म मंडल की समस्त बरकतें, कृपा तथा दात, बाहुल्य में, बिन मांगे — स्वयं ही प्राप्त होती है ।

7. उपरोक्त दर्शाये सभी ‘दैवीय-गुण’ हमारी अंतर आत्मा में सहज ही प्रविष्ट हो जाएंगे ।

8. यह सभी ‘दैवीय-गुण’ हमारे जीवन के हर पक्ष में, सहज स्वाभाविक प्रवृत्त तथा प्रकाशमान होंगे ।

9. हम ‘अपनी इच्छा’ से निकलकर सतगुरु की रजा में आ जाएंगे ।

10. इस प्रकार, इस दैवीय ‘धर्म’ के विकास तथा प्रचार के लिए हम दैवीय ‘प्रणाली’ बन जाएंगे ।

11. अहम्-ग्रस्त, मायाधारी ‘मनमुख’ से

बदलकर

‘गुरुमुख’ बन जाएंगे ।

12. भीतरी मायिकी ‘झूठ का परदा’ उतर जाएगा तथा हम दैवीय मंडल में ‘सच्चे’ बनकर — अपने प्रीतम, परमेश्वर के चरणों में समा जाएंगे ।

यह उच्च-उत्तम, पवित्र-पावन, आत्मिक अवस्था, निश्चय ही बहुत कठिन ‘खेल’ है, परन्तु —

गुरु प्रसाद

गुरुमुख प्यारों की सद्गत

नाम सिमरन
शब्द सुरति

द्वारा, सहज ही प्राप्त हो जाती है ।

गुरुबाणी में इस तथ्य को यँ दर्शाया गया है —

सरब धरम महि खेसट धरमु ॥

हरि को नामु जपि निरमलु करमु ॥ (पृ २६६)

‘साध कै सागि द्विडै सभि धरम ॥ (पृ २७१)

नानक हरि कीरतनु करि अटल एहु धरम ॥ (पृ २९९)

धरमु द्विडहु हरि नामु धिआवहु
सिमिति नामु द्विडाइआ ॥ (पृ ७७३)

हरि को नामु लै ऊतम धरमा ॥ (पृ ८७४)

भए दइआल क्रिपाल सात जन तब इह बात बतार्ई ॥

सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ कीरति गाई ॥ (पृ ९०२)

हरि कीरति साधसागति है सिरि करमन कै करमा ॥ (पृ ६४२)

बलिओ चरागु आध्यार महि सभ कलि उधरी इक नाम धरम ॥
(पृ १३८७)

‘माई मेरे मन की प्रीति ॥

एही करम धरम जप एही राम नाम निरमल है रीति’ ॥
(पृ ७१६)

‘सात का मारगु धरम की पउड़ी को वडभागी पाए ॥ (पृ ६२२)

इस प्रकार, ‘साथ लिखा’ दैवीय हुकुम’ तथा इसका ‘प्रवाह और
‘प्रवृत्ति’ ही —

अक्षरिब
पवित्र-पावन

एकमात्र
अटल
युगो-युग
सर्वज्ञ
विश्वव्यापी

आत्मिक 'धर्म' है ।

सब सबद एक सबद जेको जाणै भेउ ॥
नानक ता का दासु है सोई निरजन देउ ॥

(पृ ४६९)

(क्रमशः.....)

❖ ❖ ❖